भगवान बुद्ध का संदेश

"महात्मा बुद्ध की प्रज्ञा" इतनी विशाल है, जितना कि महासागर। तथा उनका हृदय महाकरुणा से ओतप्रोत है

पुस्तिका में वर्णित दृष्टान्त और साधारण अभिव्यक्तियाँ, जोकि सूत्रों का सार है- बुद्ध धर्म के संस्थापक, शाक्यमुनि बुद्ध के सत्य शिक्षण(अनुभव) पर आधारित है।

हम, वास्तव में, आशा करते हैं कि संक्षेप में ग्रन्थित यह पुस्तिका बुद्ध के वचनों द्वारा मानव-जीवन के सभी पहलुओं और समास्याओं का समाधान प्रस्तुत करने योग्य हो।

इस पुस्तिका में लिए गए सूत्रों के अंश "महात्मा बुद्ध का उपदेश" से संपादित किए गए है, जो कि "बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान" द्वारा प्रकाशित है।

परिचय

बौद्ध भिक्षुओं द्वारा पूरे विश्व में एक अर्थपूर्ण प्रण **"त्रिरत्न"** के रूप में प्रचारित किया गया है।

मैं 'बुद्ध' की शरण में जाता हूँ।
मैं 'धर्म' की शरण में जाता हूँ।
मैं 'संघ' की शरण में जाता हूँ।

बुद्ध :-

शाक्यमुनि, जोकि बुद्ध का ही एक ऐतिहासिक स्वरूप(आकार) है। तथापि बुद्ध के हृदय ने जो भी अनुभव किया या महसूस किया वही "प्रज्ञा" आज का सत्य है।जो बुद्ध का आंतरिक हृदय है, वही बुद्ध के शिक्षण का अवतार है।

धर्म :-

बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश ही धर्म है। धर्म ही तुम्हारे अंदरूनी सत्य को सुनता है।

बुद्ध के उपदेश का श्रवण कर हर्ष और श्रद्धा का अनुभव होता है, जो कि सूत्रों में वर्णित है।

संघ :-

संघ की वास्तविकता शाक्यमुनि के चारों ओर विद्यमान भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं का समावेश है। बोधिसत्व की अवस्था को अपना प्रयोजन बना कर प्रत्यक्ष आचरण करने वाले लोगों के समूह को ही संघ कहा जाने लगा।

बुद्ध द्वारा रचे गये "**त्रिरत्न**", सभी शिक्षाएँ और धार्मिक एवं अध्यात्मिक मित्रों में विश्वास रख कर, तुम अपने संकुचित हृदय को सत्य के व्यापक संसार में सभी अवधारणाओं में श्रेष्ठता के साथ फैला सकते हो। जिससे संपूर्ण समझ ही परिवर्तित हो सकती है।

मानव-जीवन का एक पहलू
युवा राजकुमार की वेदना

शाक्य-वंशीय क्षत्रिय हिमालय की दक्षिणी उपत्यका में बहने वाली रोहिणी नदी के तट पर बसे हुए थे। उनके गौतम-गोत्रीय कुलीन राजा शुद्धोधन ने कपिलवस्तु को अपनी राजधानी बनाया और वहाँ एक विशाल दुर्ग का निर्माण किया। राजा प्रजावत्सल था और प्रजा राजभक्त।

एक दिन रानी महामाया ने रात को एक अनोखा सपना देखा कि दक्षिण पार्श्व से एक सफेद हाथी उसके गर्भाशय में प्रविष्ट हो गया और रानी गर्भवती हो गई। उस समय की प्रथा के अनुसार प्रसूति के हेतु रानी ने अपने पितृगृह के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में रानी ने लुम्बिनी वन में विश्राम किया। वहाँ राजकुमार का जन्म हुआ। वह यादगार दिन था, वैशाख मास की पूर्णिमा (अप्रैल महीने की 8 तारीख) थी। राजा शुद्धोधन की खुशी का कोई पार न था। उसने बच्चे का नाम सिद्धार्थ रखा, जिसका अर्थ है: सभी इच्छाओं की सिद्धि (पूर्ति) किन्तु राजमहल में सुख की ओट में दुःख भी छिपा हुआ था, क्योंकि थोड़े ही दिनों में रानी मायादेवी परलोक सिधार गईं। तब राजपुत्र का पालण-पोषण रानी की छोटी बहन महाप्रजापति ने किया।

सात(7) वर्ष का होने पर राजकुमार की शिक्षा का आरम्भ हुआ । वह नीतिशास्त्र और रणकौशल सीखने लगा। साथ ही वह विश्व की विसंगतियों पर भी चिन्तन करता रहा। वसंत ऋतु के एक दिन वह अपने पिता के साथ राजमहल के बाहर घूमने निकला। एक खेत में उसने किसान को हल चलाते और हल के फाल से उखड़ कर बाहर आए हुए एक छोटे-से कीड़े को झपट कर ले जाती चिड़िया को देखा। यह देख वह एक वृक्ष की छाया में जा बैठा और अस्फुट स्वर में सोचने लगा। 'हाय, क्या सब जीव एक-दूसरे को मार डालते है। जन्म लेने के थोड़े दिनों बाद ही मातृविहीन राजकुमार ने जब जीव- जगत का यह मत्स्यन्याय और लघु जीवों की असहायता एवं दुर्दशा देखी

तो राजकुमार सिद्धार्थ का हृदय दिन-प्रतिदिन विदीर्ण होता गया। यह देख कर राजा शुद्धोधन बहुत ही चिंतित रहने लगे और वे राजकुमार का मन किसी तरह बहला कर अन्य बातों में लगाने की कोशिश में जुट गए। जब राजकुमार उन्नीस(19) साल के हुए तो राजा ने उनका विवाह राजकुमारी यशोधरा के साथ कर दिया।

दस(10) वर्ष राजकुमार वसंत, वर्षा और शरद ऋतुओं के लिए अलग-अलग बनवाए गए महलों में संगीत, नृत्य और आमोद-प्रमोद में डूबा रहा; किन्तु बीच-बीच में जब भी वह मानव-जीवन की सच्चाई समझने की कोशिश करता तो दुःख की समस्या उसके सामने मुँह खोले खड़ी हो जाती।

"ये राजसी विलास, यह स्वस्थ शरीर, लोगों को आनन्दित करने वाला यह यौवन-अन्ततोगत्वा मेरे लिए इनका क्या अर्थ है? कभी मनुष्य रोगी हो जाता है, एक दिन वृद्ध हो जाता है, मृत्यु से तो कभी बच नहीं सकता।" जीवन-संघर्ष में रत मनुष्य को अवश्यमेव किसी मूल्यवान वस्तु की खोज रहती है। उसकी खोज का लक्ष्य सही भी हो सकता है और गलत भी। अगर लक्ष्य का सन्धान गलत है तो वह यही मानेगा कि रोग, बुढ़ापा और मृत्यु अपरिहार्य हैं और तब वह सही मार्ग से भटक कर जो अस्थिर, अस्थायी और अशाश्वत है उसी को खोजता रहेगा।" "अगर उसका लक्ष्य-सन्धान सही है तो वह रोग, बुढ़ापे और मृत्यु के यथार्थ रूप को समझ कर उस परमसत्य की तलाश करेगा, जिसे खोज कर सभी मानवी दुःखों का गूढ़ संभव है। मैं इस समय में निश्चय ही अस्थिर और अस्थायी की खोज में पड़ा हुआ हूँ"।

राजकुमार के मन में यह अन्तःसंघर्ष उन्नतीस(29) वर्ष की आयु में, उसके पुत्र राहुल के जन्म लेने के समय तक, अबाध गति से चलता रहा। तब उसने राजमहल त्यागने का निर्णय लिया। राजकुमार के इस संघर्ष का चरमोत्कर्ष गृह त्याग कर प्रवजित होने के उसके निश्चय के रुप में हुआ। तथापि गृह त्याग कर भी उनके मनोमंथन का

शमन नहीं हुआ। मार(शैतान) तुरन्त उसके पीछे पड़ गया और लुभाने लगा: "राजकुमार तुम राजमहल लौट जाओ। समय की प्रतीक्षा करो। सारा संसार जल्द ही तुम्हारे चरणों में होगा"। किन्तु राजकुमार ने शैतान से कहा कि मैं पृथ्वी की किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं करता। और वह अपना सिर हिलाते हुए मुड गया और भिक्षापात्र लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिया। सर्वप्रथम राजकुमार ने भृगु ऋषि के आश्रम में जाकर तपस्या की। उसके पश्चात आरादा कालाम तथा उद्रक रामपुत्र के पास जाकर उनसे ध्यान समाधि और मोक्ष-प्राप्ति के उपाय सीखे और उनकी साधना की। किन्तु शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि इससे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। तब वे मगध चले गए और वहाँ उन्होंने नैरंजना नदी के तट पर उरूवेला वन में घोर तपस्या की। वह सचमुच उग्र तपस्या थी। जैसा कि गौतम(बुद्ध) ने स्वयं से कहा: "भूत, वर्तमान या भविष्य के किसी तपस्वी ने इतनी उग्र तपस्या न तो की है, न कोई इसके पश्चात् कर पाएगा।" ऐसी घोर तपस्या थी उनकी। फिर भी, इस तपस्या से राजकुमार को वह वस्तु प्राप्त न हो सकी जिसकी उन्हें खोज थी। तब उन्होंने छः(6) वर्ष की इस तपस्या को निमिषमात्र में त्याग दिया। नैरंजना नदी में स्नान कर, शरीर को निर्मल किया और सुजाता नामक कन्या के हाथ से खीर का पात्र ग्रहण कर स्वास्थ्य-लाभ किया।

वह अभी भी कमज़ोर थे, वह शांति से एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गए और प्राणप्रण से उन्होंने अन्तिम ध्यान में प्रवेश किया। "चाहे मेरा रक्त क्यों न सूख जाए, माँस क्यों न झड़ जाए, हड्डियाँ क्यों न गल जाए, मैं सम्यक्संबोधि प्राप्त किए बिना इस आसन को नहीं छोडूँगा।" यह था राजकुमार का दृढ़ संकल्प।

राजकुमार के हृदय में जो भीषण संघर्ष चल रहा था। वह अतुलनीय था। संभ्रात, विमूढ़ मन, उद्धेगकारी व्यग्रता, हृदय पर छाई हुई थी। काली उदास घटा, विदुप विचारों की घिनौनी आकृतियाँ-मानो मार-सेना का प्रबल आक्रमण ही था। राजकुमार ने

हृदय के कोने-कोने में उनका पीछा किया और अलग-अलग उनसे युद्ध कर उन्हें पराजित किया। सचमुच वह खून को सुखाने वाला, माँस को क्षत-विक्षत और हड्डियों को चूर-चूर करने वाला भीषण संग्राम था।

किन्तु यह युद्ध भी समाप्त हो गया और पौ फटने पर जब राजकुमार ने प्रभात-तारे की ओर गर्दन उठा कर देखा तब उनका हृदय प्रकाशमय हो गया था। उन्होंने संबोधि को प्राप्त कर लिया था, वे बुद्ध बन गए थे। राजकुमार की आयु उस समय 35(पैंतीस) वर्ष की थी और वह दिन था 8(आठ) दिसंबर का सवेरा।

विभिन्न सूत्र, सुखमाला-सुत्त, अरिपरियेसन-सुत्त

बुद्ध का आध्यात्मिक हृदय

बुद्ध का हृदय परम कारुणिक है। सभी प्रकार के उपायों से, सब सत्त्वों(इंसानों) का उद्धार करने वाला, यह परम कारुणिक हृदय- बीमारों के साथ बीमार होने वाला, पीड़ितों के साथ पीड़ित होने वाला हृदय है।

बुद्ध कहते है कि "तुम्हारा दु:ख मेरा दुख है, तुम्हारा सुख मेरा सुख है", और जैसे एक माँ अपने बच्चे का ख्याल करती है, ठीक वैसे ही एक क्षण भी छोड़ कर चले न जाने वाला, सँभालने वाला, पालन-पोषण करने वाला, उद्धार के लिये हाथ बढ़ाने वाला ही बुद्ध का हृदय है।

बुद्ध की महाकरूणा की, सत्त्वों की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पत्ति होती है। इस महाकरूणा के स्पर्श से हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धावान हृदय के कारण निर्वाण का मार्ग खुल जाता है। यह ठीक वैसा ही है, जैसे बच्चे को प्यार करने से माँ का अपने ही मातृत्व से साक्षात्कार होता है और माँ के वत्सल हृदय के स्पर्श से बच्चे का हृदय आश्वासन प्राप्त करता है।

फिर भी लोग भगवान बुद्ध के इस हृदय को नहीं जानते, और अज्ञान के कारण मोहग्रस्त होकर परेशान होते हैं और विविध क्लेशों के आधीन व्यवहार करके दु:खी होते है। पाप-कर्मों की भारी गठरी सिर पर उठा कर, हाँफते-हाँफते, मोह के एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर भटकते रहते हैं।

अभितायुर्ध्यान,
विमलकीर्तिनिर्देश-सूत्र,
शूरंगम-सूत्र, महापरिनिर्वाण-सूत्र

करुणा (慈悲)

ज्वलित गृह (जलते हुए घर) का दृष्टांत

साक्षात्कार के किनारे खड़े होकर, भवसागर में डूबने वाले लोगों को सम्बोधित करने वाले बुद्ध के वचन, लोगों के कानों में सरलता से नहीं पड़ पाते। परिनिर्वाण की सूदूर भूमिका से कहे गए बुद्ध के वचन भवसागर में डूबते-उतरते लोगों को सुनाई नहीं पड़ते। इसलिए बुद्ध स्वयं भवसागर में उतर कर मोक्ष के अपने आविष्कृत साधन काम में लाते हैं।

"भन्ते, सुनो, तथागत(बुद्ध) ने कहा: "अब आपको एक दृष्टांत-कथा सुनाएँ। एक नगर में एक महाधनी गृहपति रहता था। एक दिन उसके घर में आग लग गई। संयोग से वह बाहर गया हुआ था। जब वह लौट कर आया तो घर को जलते हुए देख कर वह हक्का-बक्का रह गया। उसने अपने बच्चों को पुकारा; किन्तु वे खेलने में इतने रमे हुए थे कि उन्हें आग का पता ही न चला। वे जलते हुए घर के अन्दर खेलते रहे। पिता ने बच्चों को चिल्ला कर पुकारा,'बच्चों, भागो, जल्दी बाहर निकल जाओ।' किन्तु पिताजी के चिल्लाने की ओर बच्चों का ध्यान न गया।

व्याकुल पिता दुबारा से चिल्लाया,"बच्चों, मेरे पास कुछ अति रमणीय अत्युत्तम खिलौने हैं। जल्दी बाहर आकर उन्हें ले लो।" इस बार बच्चों ने अपने पिता की आवाज सुनी, और बच्चे जलते हुए घर से शीघ्र ही बाहर निकल आए और अनर्थ(जलने) से बच गए।

यह त्रैधातुक संसार सचमुच एक जलता-हुआ घर है। किन्तु घर जल रहा है इसका सत्त्वों को पता ही नहीं। उनके वहीं जल कर मर जाने का डर है। इसलिए बुद्ध महाकारूणिक हृदय से अनगणित (असंख्य) साधनों से काम लेकर उन्हें बचाते रहते है।

सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र

महाप्रणिधान(महासंकल्प)

बुद्ध की करूणा केवल इसी जन्म के लिए है, ऐसा मानना ठीक नहीं है। यह तो बहुत पहले से, जब से मनुष्य अज्ञानवश जन्म-मृत्यु के फेरे में फँस कर मोह पर मोह के पुट चढ़ाता आया, तभी से चली आ रही है।

बुद्ध सदा लोगों के सामने, लोगों का सबसे प्रिय स्वरूप(आकार) लेकर प्रकट होते रहते हैं और उद्धार के सभी उपाय उन्हें सुलभ करा देते है।

शाक्य-वंश में राजकुमार के रूप में जन्म लेकर भी, घर की सुख-सुविधाओं को छोड़कर उन्होंने वैराग्य को अपनाया, उग्र तपस्या की, धर्म का साक्षात्कार किया, धर्म का उपदेश दिया और अन्त में मृत्यु के अधीन होकर, मृत्यु के सत्य का दर्शन कराया।

सत्त्वों(इंसान) के मोह की कोई सीमा नहीं है, इसलिए बुद्ध के उद्धार कार्य की भी कोई सीमा नहीं है। सत्त्वों(इंसान) के पापों की कोई थाह नहीं होती, इसलिए बुद्ध की करूणा भी अथाह होती है। इसलिए भगवान बुद्ध ने अपनी साधना के आरंभ में चार महाप्रणिधान(महासंकल्प) किए थे।

1:- प्रतिज्ञापूर्वक सब सत्त्वों (इंसान) का उद्धार करना।

2:- प्रतिज्ञापूर्वक सब क्लेशों से मुक्ति पाना।

3:- प्रतिज्ञापूर्वक सब उपदेशों का अध्ययन करना।

4:- प्रतिज्ञापूर्वक अनुत्तर-सम्यक्संबोधि को प्राप्त करना।

इस चार प्रतिज्ञाओं के आधार पर बुद्ध ने साधना की थी। बुद्ध की साधना के आधार ये चार प्रणिधान हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्रेम और करूणा की अभिव्यक्ति ही बुद्धत्व की मूल प्रकृति हैं बुद्ध का हृदय सत्त्वों(इंसानों) का उद्धार करने की इच्छा रखने वाली उनकी महाकरूणा ही है

सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र, महायान-जातक-चित्तभूमिपरीक्षा सूत्र

अनादि बुद्ध

चाँद छिप जाता है तब लोग समझते हैं कि वह अस्त हो गया, और वह प्रकट होता है तब लोग कहते कि वह उदय हो गया। किन्तु चाँद तो सदा विद्यमान है, उसका उदयास्त नहीं होता। उसी प्रकार बुद्ध भी सदा विद्यमान हैं, किन्तु प्राणियों को ज्ञान देने के लिए, परिनिर्वाण का आभास कराते हैं।

चाँद (月)

लोग चाँद को पूर्ण होता हुआ या घटता हुआ कहते हैं, किन्तु चाँद तो सदा पूर्ण होता है। वह न तो बढ़ता है, न घटता है। उसी प्रकार बुद्ध भी सदा विद्यमान रहते हैं; न तो उनका जन्म होता है, न मृत्यु। केवल जिसकी जैसे दृष्टि होती है, उसके अनुसार वे उन्हें जन्म लेते हुए या मरते हुए दिखाई देते हैं।

चाँद सब पर उदित होता है। नगर पर, गाँव पर, पहाड़ पर, नदी पर, तालाब के भीतर भी, घट के अंदर भी, पत्ते की नोक पर लटकती हुई ओस की बिन्दु में भी दिखाई देता है। आदमी सैकड़ों मील चले तो भी चाँद उसके साथ-साथ चलता है। स्वयं चाँद में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु देखने वाले आदमी के अनुसार वह अलग-अलग दिखाई देता है। उसी प्रकार बुद्ध भी, संसार के प्राणियों के अनुसार अपरिमित रुप प्रकट करते है, किन्तु वे अनादि-अनंतकाल तक विद्यमान रहते हैं, उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

महापरिनिर्वाण-सूत्र

भगवान बुद्ध के उपदेश

सम्यक्संबोधि की कामना करने वालों को आचरण के तीन मार्गों को समझ लेना चाहिए और उनका अनुसरण करना चाहिए:-

पहला है - शीलों का पालन,
दूसरा है - ध्यान की साधना,
तीसरा है - प्रज्ञा का विकास।

शील क्या है? हर एक को, चाहे वह भिक्षु हो या उपासक, शीलों का पालन करना चाहिए। उसे अपने चित्त और शरीर को नियंत्रित कर पाँच इन्द्रिय-द्वारों की सदैव रखवाली करनी चाहिए। उसे छोटे से छोटे पाप करने से भी डरना चाहिए और हर क्षण केवल सदाचरण करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

ध्यान का क्या अर्थ है? उसका अर्थ है चित्त में लोभ और पाप-वासनाएँ उठते ही उनका त्याग करना और चित्त को पवित्र और शान्त रखना।

प्रज्ञा क्या है? वह है चार आर्य सत्यों का सम्यक्-आकलन और उनका धैर्यपूर्वक पालन। यह दुःख है, यह दुःख समुदय है, यह दुःखनिरोध है और यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है-इस प्रकार स्पष्ट रूप से साक्षाकार करना चाहिए।

जो इन तीन मार्गों का आस्था से अनुसरण करते हैं वे ही बुद्ध भगवान के सच्चे शिष्य कहलाते हैं।

विनय महावग्ग,
संयुक्त निकाय,
धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त

दु:ख (苦)

दु:ख के कारण (集)

दु:ख का विलुप्त होना (滅)

निर्वाण का मार्ग (道)

चार आर्य सत्य

यह संसार दुःखमय है। जन्म दुःख है, जरा(संसार) दुःख है, व्याधि और मृत्यु सब दुःख है। अप्रिय व्यक्ति से संयोग दुःख है, प्रिय व्यक्ति से वियोग दुःख है, तथा इच्छाओं का पूरा न होना भी दुःख है। वास्तव में जो जीवन आसक्ति से युक्त है, वह दुःखमय है। वह दुःख पहला आर्य सत्य है।

मनुष्य-जीवन के इस दुःख का उद्भव कैसे होता है यह सोचे तो वह निःसंशय मनुष्य-हृदय में बसी हुई तृष्णा के कारण होता है और इस तृष्णा का मूल मानव शरीर की जन्मजात प्रबल वासनाओं में है। जीवित रहने की प्रबल आकांक्षा(इच्छा) पर आधारित वासनाएँ कामनाओं की ओर इतनी तीव्रता से आकर्षित होती रहती हैं कि कभी-कभी कामनाएँ, मृत्यु तक का कारण बन जाती हैं। यह दुःख का हेतु आर्य सत्य है। इस तृष्णा को मूल से उखाड़ कर, सभी आसक्तियों से मुक्ति पाने पर मनुष्य के दुःख का निवारण होता है। यह दुःख निरोध आर्यसत्य है।

इस दुःख के सम्पूर्ण निरोध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का आचरण करना चाहिए। यह अष्टांगिक मार्ग दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

ये चार आर्य सत्य मनुष्य को अच्छी तरह से आत्मसात(पालन) करने चाहिए।

विनय महावग्ग,
संयुक्त निकाय, धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त

संबोधि (覚)

अष्टांगिक मार्ग

यदि कोई मनुष्य तृष्णा को मूल से उखाड़ कर, सभी आसक्तियों से मुक्ति पाता है, तो उसके दुःख का निवारण होता है। इस दुःख के संपूर्ण निरोध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अष्टांगिक मार्ग का आचरण करना चाहिए।

ये अष्टांगिक मार्ग है-:

सम्यक् दृष्टि
सम्यक् संकल्प
सम्यक् वचन
सम्यक् कर्म
सम्यक् जीविका
सम्यक् व्यायाम
सम्यक् स्मृति
सम्यक् समाधि

ये विश्व दुःख से भरा है। इसलिए जो भी इस दुःख से मुक्ति चहाता है, उसे तृष्णा का संपूर्ण क्षय(त्याग) करना होगा। तृष्णा और दुःख से मुक्ति निर्वाण द्वारा ही प्राप्त होती है और निर्वाण इन आर्य अष्टांगिक मार्ग से ही प्राप्त होता है।

श्रीमालादेवीसिंहनाद-सूत्र

हेतु-अवस्था (परिस्थिति-अवस्था)

जिस प्रकार हेतु(परिस्थिति) प्राणियों के दुःख का कारण है, तथा उन दुःखों के विमोक्ष के लिए साधना कारण बनती है, वैसे ही सभी वस्तुएँ हेतु(परिस्थिति) के होने से उत्पन्न होती है, हेतु के नष्ट होने से वस्तुएँ नष्ट होती है।

वर्षा का होना, हवा का चलना, फूलों का खिलना, पत्तों का झड़ना सभी हेतु-निर्भर है और हेतु के अभाव से समाप्त हो जाते हैं।

यह शरीर भी माता-पिता के हेतु से पैदा होकर, अन्न से परिपुष्ट होता है, तथा यह चित्त भी अनुभव और ज्ञान के कारण सुसंस्कृत होता है।

अतः, यह शरीर और चित्त दोनों ही हेतु-निर्भर हैं और हेतु-परिवर्तन से परिवर्तित होते रहते हैं।

जाल अनेक ग्रंथियों से बना होता है। ये ग्रंथियाँ परस्पर जुड़कर जाल बनाती हैं, वैसे ही इस ससांर की सभी वस्तुएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं। जाल की केवल एक ग्रंथी को जाल मानना या जाल से स्वतंत्र मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

जाल, इसलिए जाल है कि वह कई ग्रंथियों के आपस में जुड़े होने से बना है। और जाल की हर ग्रंथि एक-दूसरे से संबद्ध और गुंफित है।

अवतंसक सूत्र
लंकावतार-सूत्र

पूर्वधारित दृश्य

क्योंकि इस संसार की सभी वस्तुएँ हेतुजन्य हैं, इसलिए मूलतः उनमें कोई भेद नहीं होता। जो भेद दिखाई देता है वह केवल मनुष्यों की भ्रामक दृष्टि के कारण ही है।

आकाश में पूर्व-पश्चिम का कोई भेद नहीं होता, फिर भी लोग पूर्व-पश्चिम का भेद निर्माण कर,"यह पूर्व है", "वह पश्चिम है", ऐसा आग्रह रखते है।

गणित की संख्याओं में, एक से अनन्त तक की सभी संख्याएँ अपने आप में परिपूर्ण होती है और उनमें परिमाण के कम-अधिक का कोई भेद नहीं होता। फिर भी लोग लोभवश अपनी सुविधा के लिए उनके साथ कम-अधिक का भेद जोड़ देते हैं।

मूलत: न जन्म है न मृत्यु, फिर भी लोग जन्म-मृत्यु में भेद करते हैं, मनुष्य के कर्म में अपने-आप में न कोई पुण्य होता है, न पाप, फिर भी लोग उनमें पाप-पुण्य का भेद देखते हैं, यह सब उनकी भ्रान्त दृष्टि के कारण होता है।

बुद्ध इन भेदों से परे रहते हैं, इस संसार को आकाश में गुजरने वाले बादल के समान तथा आभास के समान देखते हैं। वे जानते हैं कि मन का लगाव और अलगाव सभी निरर्थक है। इसलिए वे मन के सभी व्यापारों से निर्द्वन्द्व और पृथक रहते हैं।

संयुक्त निकाय
लंकावतार-सूत्र

मध्यम-मार्ग का दृश्य

मान लीजिए, कि एक लकड़ी का कुन्दा किसी बड़ी नदी के प्रवाह में बहता जा रहा है। यदि यह कुन्दा दाएँ-बाएँ तट से न टकराए, बीच प्रवाह में न डूबे, जमीन पर न चढ़े, मनुष्य से बाहर न निकाला जाए, भँवर में न फँसे, और अन्दर से सड़ न जाए तो वह सीधा समुद्र में प्रवेश करेगा। जीवन भी प्रवाह में बहने वाले इस कुन्दे के समान है। यदि मनुष्य कामलोलुप जीवन से आसक्त न हो अथवा व्यर्थ तपश्चर्या के पीछे पड़ कर काय-क्लेश में न लगे; यदि मनुष्य अपनी अच्छाइयों का घमंड़ न करे या अपने दुष्कर्मों में लिप्त न हो। निर्वाण की खोज में होकर मनुष्य न तो मोह का तिरस्कार करे, न उनसे भयभीत हो, इसका अर्थ है कि वह मनुष्य मध्यम-मार्ग का आचरण कर रहा है।

निर्वाण-पथ पर चलने वाले के लिए सब से महत्त्व की बात है कि मनुष्य किसी भी अति में न फँसकर सदा मध्यम-मार्ग का ही अनुसरण करता रहे।

अंगुत्तर निकाय

शून्यता

यह जो सार्वभौम एकात्मता का सिद्धान्त है, कि वस्तुओं में स्वभावतः कोई भेद-चिन्ह होते हैं, इसी को शून्यता कहते हैं। शून्यता का अर्थ है-: अयथार्थता, अनुत्पति, निःस्वभावता, अभिन्नता। क्योंकि वस्तुओं का न तो कोई अपना रूप होता है, न लक्षण, इसलिए हमारे लिए यह कहना संभव नहीं है कि उनकी उत्पति होती है या उच्छेद होता है। वस्तुओं का ऐसा कोई अपना स्वभाव नहीं होता, जिस से उनका भिन्न-भिन्न शब्दों में वर्णन किया जा सके, इसलिए वस्तुओं को अयथार्थ कहा जाता है। जैसा कि बताया गया है सभी वस्तुओं की उत्पति और उच्छेद हेतु और प्रत्ययों के कारण होता है, कोई भी वस्तु अपने-आप अस्तित्व में नहीं रह सकती, हर एक वस्तु अन्य हर वस्तु से संबंधित हुआ करती है। जहाँ-जहाँ प्रकाश होता है, वहाँ छाया होती है, जहाँ-जहाँ दीर्घता होती है वहाँ लघुता होती है, जहाँ-जहाँ सफेद होता है वहाँ काला भी होता है। इस प्रकार वस्तुओं को अपना स्वभाव स्वयंसिद्ध नहीं होता, इसलिए उन्हें अयथार्थ कहा जाता है। इस तर्क के अनुसार निर्वाण का अज्ञान या मोह से कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता, न ही अज्ञान का निर्वाण से। क्योंकि वस्तुओं के मूल स्वभाव में कोई भिन्नता नहीं होती, उनमें परस्पर भिन्नता नहीं हो सकती।

लंकावतार-सूत्र

शून्यता (空)

पानी का आकार (स्वरूप)

परिशुद्ध और दूषणरहित चित्त का मूलभूत सत्य सारतत्त्व-चित्त में पैदा होने वाली इच्छाओं तथा ऐहिक वासनाओं की ओट में वास करता है।

पानी गोल बरतन में गोल और चौकोर में चौकोर दिखाई देता है, किन्तु पानी का अपना कोई विशिष्ट आकार नहीं होता। किन्तु लोग यह तथ्य जानते हुए भी अक्सर भूल जाते हैं।

लोग इसको अच्छा और उसको बुरा देखते हैं, इसको पसन्द और उसको नापसन्द करते हैं, और वे सत्त और असत्त में भेद करते है; और फिर इन उलझनों में फँसकर और उनके प्रति आसक्त होकर कष्ट पाते हैं।

यदि लोग इन काल्पनिक और असत्य भेदों के प्रति अपनी आसक्तियों का त्याग करें तथा अपने मूल चित्त की पवित्रता को पुन: स्थापित करें तो उनका मन और शरीर दोनों दूषणों और दु:खों से मुक्त हो जाएँगे, वे मुक्ति में से पैदा होने वाली शांति का अनुभव करेंगे।

शूरंगम-सूत्र

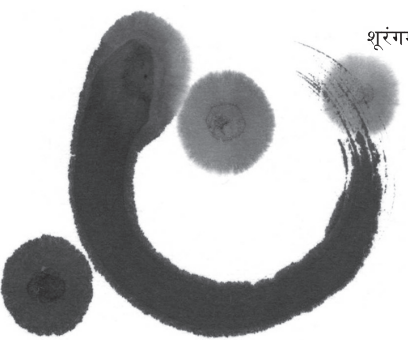

हृदय (心)

बुद्धत्व का बीज

हमने विशुद्ध और सत्य चित्त के मूलभूत होने की बात की; वही बुद्धता अर्थात् बुद्धत्व का बीज है।

यदि हम सूर्य और रुई के बीच में सूर्यमणि रखें तो हमें आग प्राप्त हो सकती है, किन्तु यह आग कहाँ से आती है? सूर्यमणि तो सूर्य से अत्यधिक दूर होता है, किन्तु सूर्यमणि द्वारा रूई पर आग अवश्य प्रकट होती है। यदि रूई में प्रज्वलित होने को स्वभाव न होता, तो आग कदापि न जलती।

उसी प्रकार, यदि बुद्ध की प्रज्ञा की किरणें मनुष्य के चित्त पर केन्द्रीभूत की जाएँ, तो उसका सत्य स्वभाव, जो कि बुद्धता ही है, प्रभासित होगा, और उसका प्रकाश अपनी दीप्ति से लोगों के मन आलोकित कर देगा और बुद्ध में श्रद्धा उत्पन्न करेगा। बुद्ध प्रज्ञा का सूर्यमणि सभी मानवी मनों पर केन्द्रित करते हैं और इस प्रकार उनमें श्रद्धा की अग्नि प्रज्वलित होती है।

शूरंगम-सूत्र

बुद्धिमत्ता (智慧)

पाँच असंभव बातें

इस संसार में सभी मनुष्यों के लिए पाँच बातें पूर्णता असंभव हैं।

पहली :- बुढ़ापा आने पर शरीर को वृद्ध(बुजुर्ग) होने से रोकना,

दूसरी :- शरीर के व्याधिग्रस्त (रोग) होते हुए भी, व्याधिग्रस्त होने से रोकना,

तीसरी :- शरीर के मरण-योग्य होते हुए भी, मरने से उसे रोकना,

चौथी :- वस्तु के विनाश योग्य होते हुए भी, विनाश से उसे रोकना,

पाचँवी :- वस्तु के क्षीण होने योग्य होते हुए भी, क्षय से उसे रोकना।

संसार के सामान्य लोग कभी न कभी इन अपरिहार्य तथ्यों से टकरा कर व्यर्थ दुःख और शोक में डूब जाते हैं, किन्तु जिन्होंने बुद्ध के उपदेश को ग्रहण किया है वे अपरिहार्य जानकर इस प्रकार व्यर्थ दुःख नहीं करते।

अंगुत्तर-निकाय

धम्मपद

❖ इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते। वह मैत्री से ही शान्त होते है-यह सदा का नियम है।

❖ जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है वह इस कारण ज्ञानी है। जो मूर्ख अपने को ज्ञानी माने, वह यथार्थ में मूर्ख कहलाता है।

❖ संग्राम में हजारों पर हजारों बार जीतने से उत्तम विजय उसकी है, जो अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है।

❖ उत्तम धर्म के दर्शन न करने वाले सौ वर्ष के जीवन से श्रेष्ठ हैं, धर्म को देखने वाले का एक दिन का जीवन है।

❖ मनुष्य का जीवन पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।

❖ सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को शुद्ध करना, यह बुद्धों की शिक्षा है।

❖ न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता, न बन्धु। मृत्यु के समय कोई बन्धुजन रक्षक नहीं हो सकते।

*ऊपर कहे गए शब्द धम्मपद में से लिए गए है, जो भगवान बुद्ध द्वारा रचित पदों में से एक है, पूरे विश्व में बड़े पैमाने में जिनका अनुसरण किया जाता है, और इसे "बौद्ध-धर्म ग्रन्थ' में से एक उत्तम ग्रन्थ माना गया है।

मार्ग का अनुसरण करना

एक बार, सुधन नामक एक लड़का था। सम्यक्संबोधि प्राप्त करने की इच्छा से, प्रेरित होकर, वह एकाग्र होकर, मार्ग की खोज करने लगा। एक मछुए से उसने समुद्र का ज्ञान प्राप्त किया। एक चिकित्सक से उसने कष्ट पीड़ित रोगियों के प्रति करूणा से व्यवहार करना सीखा। एक धनी से उसने सीखा कि कौड़ी-कौड़ी बचाना ही धनी होने का रहस्य है और इससे उसे यह समझ में आ गया कि निर्वाण के पथ पर छोटी-सी उपलब्धि को भी हाथ से न जाने देना कितना आवश्यक है।

एक ध्यानमार्गी भिक्षु से उसने सीखा कि पवित्र और शान्त मन में दूसरों के मन को पवित्रता और शान्ति देने की कितनी चमत्कारी शाक्ति होती है। एक दिन किसी असाधारण व्यक्तित्व वाली महिला से उसकी भेंट हो गई और उसके परोपकारी स्वभाव से प्रभावित सुधन ने सीखा कि परोपकार ज्ञान का ही फल है। एक बार किसी वृद्ध परिव्राजक से उसकी भेंट हुई, जिसने उससे कहा कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तुम्हें तलवारों का पहाड़ लाँघ कर जाना होगा और अग्नि की घाटी में से गुजरना होगा। इस प्रकार सुधन ने अपने अनुभव से सीखा कि उसने जो भी देखा या सुना वह सब सदुपदेश ही था।

एक गरीब, अपंग स्त्री से उसने धैर्य की शिक्षा ली। रास्ते में खेलते हुए बच्चों को देख कर उसने सहज आनन्द का पाठ सीखा। कुछ सौम्य एवं विनम्र स्वभाव के लोगों से, जो दूसरों द्वारा इच्छित वस्तुओं की कभी चाह(इच्छा) नहीं रखते थे, उसने संसार के सभी लोगों के साथ मिल-जुलकर रहने का रहस्य सीखा।

सुगन्ध(महक) के लिए अलग-अलग द्रव्यों के मिश्रण को देखकर उसने सामंजस्य का सबक सीखा और फूलों की सजावट के द्वारा धन्यवाद ज्ञापन की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन, वन में से गुजरते हुए वह एक वृक्ष के नीचे आराम करने बैठ गया और उसने देखा कि

गिरकर सड़ते हुए वृक्ष के समीप ही एक छोटा-सा पौधा उगा हुआ है; उससे उसने जीवन की अनित्यता का ज्ञान प्राप्त किया।

दिन में सूर्य का प्रकाश और रात को टिम-टिमाते तारे उसके मन को ताजगी देते थे। इस प्रकार सुधन ने अपनी लम्बी यात्रा के विविध अनुभवों से लाभ उठाया।

सचमुच, जो निर्वाण की कामना करते हैं उन्हें चाहिए कि अपने हृदय को किला समझें और बुद्ध के प्रवेश के लिए उसके दरवाजे पूरे खोल दें और विनम्रता से उन्हें अन्तरतम कक्ष में निमन्त्रित कर श्रद्धा की सुगन्धित धूप तथा कृतज्ञता और प्रसन्नता के पुष्प अर्पित करें।

अवतंसक-सूत्र

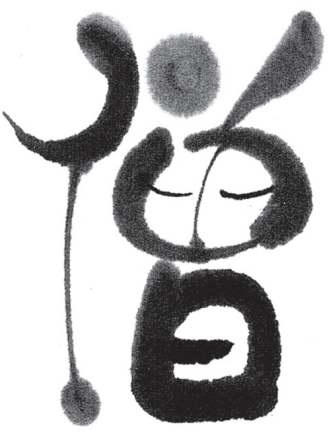

संघ (僧)

अस्तित्वहीन सरसों के बीज

एक बार एक युवा महिला कृशा गौतमी, जोकि एक धनवान व्यक्ति की पत्नी थी, जो अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु के कारण पागल हो गई थी। उसने मृत बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया। "क्या ऐसा कोई नहीं है जो मेरे इस बच्चे को ठीक कर सके?" पूछती हुई दर-दर भटकने लगी।

कोई भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाया। किन्तु अन्त में बुद्ध के एक उपासक ने उसे भगवान बुद्ध के पास जाने की सलाह दी, जो उस समय जेतवन में विहार कर रहे थे। इसलिए वह मृत बच्चे को बुद्ध के पास ले गई।

भगवान ने सहानुभूति से उसकी ओर देखा और कहा,"इस बच्चे को ठीक करने के लिए मुझे कुछ पीली सरसों के दानों की आवश्यकता होगी। जा और जिस घर में कोई मरा न हो ऐसे घर से पीली सरसों के चार-पाँच दाने ले आ।"

तब वह पगली ऐसा घर ढूँढने चल दी जिसमें कोई न मरा हो; किन्तु व्यर्थ। अन्त में वह भगवान बुद्ध के पास लौटने के लिए बाध्य हो गई। उनके शांत-सौम्य सान्निध्य में, पहली बार उनके वचनों का अर्थ उसकी समझ में आया और उसे लगा कि जैसे वह स्वप्न से जाग उठी है। वह बच्चे के शव को ले गई, उसका दाह-कर्म किया और फिर बुद्ध के पास लौट कर उनकी शिष्या बन गई।

थेरीगाथा अटठ्कथा

बुनियाद के बिना तिमंजिला भवन

किसी समय एक धनी किन्तु मूर्ख मनुष्य रहता था। एक बार उसने किसी दूसरे आदमी का सुन्दर तिमंजिला भवन देखा और उसे ईर्ष्या हुई। यह सोचकर कि मैं तो इतना धनी हूँ, उसने अपने लिए ठीक वैसा ही भवन बनवाने का निश्चय किया।

उसने राज-मिस्त्री को बुलाकर भवन बनाने का आदेश दिया। राज-मिस्त्री ने तुरन्त स्वीकार किया और पहले बुनियाद बनाकर फिर उस पर पहली मंजिल, दूसरी मंजिल और अन्त में तीसरी मंजिल बनाने का निश्चय किया। धनी मनुष्य का धीरज टूट गया और उसने कहा:- "मुझे बुनियाद या पहला या दूसरा मंजिला नहीं केवल वहीं सुन्दर तिमंजिला चाहिए। उसे जल्दी बना दो।"

मूर्ख मनुष्य बिना परिश्रम और प्रयास के ही अच्छे परिणामों की अपेक्षा रखता है। किन्तु जैसे बुनियाद के बिना तीसरी मंजिल बन ही नहीं सकती, ठीक वैसे ही बिना परिश्रम और प्रयास के अच्छे परिणाम या फल प्राप्त नहीं हो सकते।

उपमा-सातक-सूत्र

साँप की पूँछ और उसका सिर

एक बार साँप की पूँछ और सिर के बीच झगड़ा पैदा हुआ, कि कौन आगे रहे?

पूँछ ने सिर से कहा,"हमेशा तुम आगे रहते हो, यह ठीक नहीं है, तुम्हें कभी मुझे भी आगे रहने का अवसर देना चाहिए।" सिर ने उत्तर दिया,"यह प्रकृति का नियम है कि मैं आगे रहूँ; मैं तुम्हारे साथ स्थान बदल नहीं सकता।

किन्तु झगड़ा चलता रहा और एक दिन पूँछ ने गुस्से से अपने-आप को एक पेड़ से बाँध लिया और इस प्रकार सिर को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब सिर इस संघर्ष से थककर लथ-पथ हो गया, तब पूँछ ने अवसर देखकर अपने मन की कर डाली। नतीजा यह हुआ कि वह साँप आग के कुंड में गिर गया और मर गया।

इस विश्व में हर एक वस्तु का समुचित क्रम और अपना निश्चित कार्य-क्षेत्र होता है। असंतोष के कारण इस क्रम को यदि तोड़ा जाए, तो सरलता से कार्य करने में बाधा पैदा होगी और सारी व्यवस्था टूट जाएगी।

उपमा-सातक-सूत्र

बाँस के प्रति दयालुता

हिमालय पर्वत की तलहटी में किसी झुरमुट में एक तोता अन्य कई पशु-पक्षियों के साथ रहता था। एक दिन तेज हवा के कारण बाँसों के घर्षण से उस झुरमुट में आग लग गई और सभी पशु-पक्षी घबरा कर इधर-उधर दौड़ने लगे।

तोता, दीर्घकाल तक निवास स्थान देने वाले झुरमुट के उपकारों का बदला चुकाने और संकट में पड़े हुए असंख्य पशु-पक्षियों के प्रति दयाभाव के कारण, उन्हें बचाने के लिए, निकट के तालाब में जाकर अपने पंख भिगोकर आग के ऊपर उड़ गया और आग बुझाने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ा कर पानी की बूँदों को छिड़कने लगा। झुरमुट के उपकारों को याद कर और असीम करुणा से भरे हृदय से वह थकावट को अनुभव किए बिना यह काम करता रहा।

उसकी यह करुणा और आत्म-समर्पण की भावना देख कर स्वर्ग के एक देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आकाश से पृथ्वी पर उतरकर तोते से कहा, "तुम बहुत बहादुर हो, किन्तु इतनी बड़ी आग पर पानी के कुछ छींटे गिराकर तुम किस लाभ की अपेक्षा करते हो?" तोते ने उत्तर दिया: "ऐसा कुछ भी नहीं जो कृतज्ञता और आत्मसमर्पण की भावना से सिद्ध नहीं हो सकता। मैं बार-बार कोशिश करता रहूँगा, फिर चाहे मुझे एक और जन्म ही क्यों न लेना पड़े।"

देवता, तोते की इस भावना से बहुत प्रभावित हुए और उन दोनों ने मिलकर आग को बुझा दिया।

संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र

हृदय की हेकड़ी

मान लीजिए कि कोई आदमी वन में वृक्ष के तने के भीतर का गूदा लेने के लिए जाए और शाखाओं और पत्तों का भार लेकर लौटे और यह मान बैठे कि जिस चीज़ के लिए वह गया था, वह प्राप्त हो गई, गूदे के बदले छाल और टहनियाँ पाकर संतोष कर ले तो क्या यह उसकी मूर्खता न होगी। किन्तु यही बात अधिकतर लोग कर रहे हैं।

कोई मनुष्य जन्म, बुढ़ापा, व्याधि और मृत्यु अथवा शोक, विलाप, दुःख और पीड़ा से मुक्ति दिलाने वाले मार्ग पर चलने लगता है, और थोड़ी दूर चलकर, साधना में कुछ प्रगति होते ही, एकदम घमंड़ी, आत्मश्लाघी और हेकड़ बन जाता है। यह उसी आदमी के समान है जो गूदा पाने के लिए गया और टहनियों और पत्तों के भार से संतोष मानकर लौट आया।

दूसरा मनुष्य थोड़े से प्रयास से जो कुछ प्रगति हुई। उसी से संतोष मानकर साधना में ढील देता है और घमंड़ी, आत्मश्लाघी और हेकड़ हो जाता है तो यह मनुष्य भी गूदे के बदले टहनियों का भार उठाकर लौटने वाले मनुष्य के समान है।

और भी एक मनुष्य है, जो अपने मन को शांत और विचारों को शुद्ध होते हुए देखकर साधना में ढीला पड़ जाता है और घमंड़ी, आत्मश्लाघी और हेकड़ हो जाता है; वह भी गूदे के बदले में वृक्ष की छाल का भार ढो रहा होता है।

निर्वाण की कामना करने वालों का कार्य आसान नहीं होता; उन्हें इस मार्ग में आदर, मान और प्रतिष्ठा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सब से पहले तो हमें जन्म-मरण वाले इस संसार में वास्तविक स्वरुप को सही-सही समझना होगा।

मज्झिम निकाय, महासारोपम-सुत

छह पारमिताएँ

छह(6) पारमिताएँ हैं- दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान, तथा प्रज्ञा। इनका आचरण करने से, इनके द्वारा मोह के इस तट को पार कर निर्वाण के उस तट तक पहुँच सकते हैं, अत: इन्हें षट्पारमिता कहते हैं।

दान के कारण स्वार्थ से मुक्ति मिलती है; शीलों के आचरण से दूसरों के अधिकारों और सुख-सुविधाओं के प्रति मनुष्य सोचने लगता है; शान्ति के पालन से भयभीत अथवा क्रुद्ध मन को नियंत्रित रखने में सहायता मिलती है; वीर्य की साधना मनुष्य को अध्यवसायी और प्रामाणिक बनाने में सहायक होती है; ध्यान की साधना इधर-उधर व्यर्थ भटकने वाले चंचल मन को शांत करती है और प्रज्ञा की साधना अन्धकारपूर्ण सम्भ्रमित मन को स्पष्ट और तीक्ष्य अन्तर्दृष्टि से आलोकित करती है।

दान और शीलों का पालन, बड़े दुर्ग के निर्माण के लिए आवश्यक मजबूत बुनियाद के समान, साधना की बुनियाद है। शान्ति तथा वीर्य दुर्ग की दीवारों की तरह बाहर के संकटों से बचाते हैं। ध्यान और प्रज्ञा मनुष्य का अपना कवच है, जो जन्म और मृत्यु के आक्रमणों से उसकी रक्षा करता है।

दान के बाद पछतावे या घमंड़ की भावना पैदा हो तो उसे भी सच्चा दान नहीं कहा जा सकता। सच्चा दान खुशी से दिया जाता है। जिसमें दानी अपने-आपको, ग्रहणकर्ता को और दान को भी भूल जाता है।

सच्चा दान, सहज रुप में शुद्ध करुणापूर्ण हृदय से दिया जाता है, जिसमें प्रत्युपकार की कोई कामना नहीं होती। कामना होती है केवल एक साथ निर्वाण में प्रवेश करने की।

अवतसंक-सूत्र, महापरिनिर्वाण-सूत्र

सात प्रकार का (दान)अर्पण

धनवान न होते हुए भी सात प्रकार के दान आसानी से दिए जा सकते हैं।

पहला है-: शरीर-दान-यह अपने शारीरिक परिश्रम द्वारा दिया जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने जीवन को समर्पित करना है।

दूसरा है-: हृदय-दान-इंसान को करूणापूर्वक हृदय से दूसरों के साथ पेश आना।

तीसरा है-: नेत्र-दान-प्रेमपूर्ण दृष्टि से सब की ओर देखना, जिससे उनका मन प्रसन्न हो उठे।

चौथा है-: मुखाकृति-दान-सौम्य मुखाकृति से सदा मुस्कराते हुए सब के साथ व्यवहार करना।

पाचँवा है-: वाणी-दान-दूसरों से सहृदय और प्यार-भरे शब्दों में बात करना।

छठा है-: आसन-दान-अपना आसन दूसरे को बैठने के लिए देना।

सातवाँ है-: आश्रय देना-दूसरों को एक रात अपने घर पर बिताने देना।

इस प्रकार के दान कोई भी अपने दैनिक जीवन में कर सकता है।

संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र

न अधिक खिचांव न अधिक ढीले

श्रोण (सोण) नाम का एक युवक था, जिसका जन्म धनी परिवार में हुआ था, किन्तु जो शरीर से बहुत कोमल था। वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए बहुत उत्सुक था, इसलिए भगवान बुद्ध का शिष्य बन गया। रात को पैरों के तलवों में खून निकलने तक चंक्रमण करके वह साधना करता था, किन्तु फिर भी उसे निर्वाण-प्राप्ति नहीं हुई।

भगवान बुद्ध को उस पर दया आई और उन्होंने कहा,"श्रोण, जब तुम गृहस्थ थे, तब तुमने वीणा तो बजाई ही होगी। तुम जानते ही हो कि वीणा के तार अधिक खींचे जाएँ या अधिक ढीले छोड़े जाएँ तो उनसे मधुर संगीत नहीं निकलता। संगीत तभी निकलता है जब उसके तार ठीक अनुपात में खींचे गए हो।

"निर्वाण की साधना में भी शिथिल बनने से निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता और अति उत्साह से तनकर प्रयत्न करने पर भी निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य को प्रयत्न करते समय ठीक अनुपात का सतत ख्याल रखना चाहिए।"

इस प्रकार शिक्षा प्राप्त कर श्रोण ने वीर्यसमता संपादन की और इंद्रियसमत्व प्राप्त कर उसने शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लिया।

थेरगाथा अटठ्कथा

अपने लिए आत्मदीप बनो
अपने लिए आत्मशरण बनो

भगवान बुद्ध ने कुशीनगर के बाहर शाल-उपवन में अपना अंतिम उपदेश किया।

"भिक्षुओं, आत्मदीप बनो, आत्मशरण बनो, किसी दूसरे पर आश्रित मत रहो। धर्मदीप बनो, धर्मशरण बनो। दूसरे उपदेशों पर आश्रित मत रहो।

"अपने शरीर को देखो। उसके मलों का ख्याल कर उसके प्रति आसक्ति मत रखो। उसकी वेदना, उसका आनंद सभी दुःखों का मूल बनते है, उनके प्रति हम आसक्त कैसे हो सकते हैं? अपने हृदय को देखो उसमें आत्मा-जैसी कोई वस्तु नहीं है यह जानकर, उसके मोह में फँसना नहीं चाहिए। ऐसा करने से हम सभी दुःखों का निवारण कर सकते हैं। इस संसार से मेरे चले जाने के बाद भी, तुम लोग इस प्रकार मेरे उपदेश का पालन करते रहो। तभी तुम मेरे सच्चे शिष्य कहलाओगे।

"भिक्षुओं, अब तक मैंने तुम लोगों के लिए जो धर्म और विनय के उपदेश दिए हैं, उन्हें सदा सुनते रहो, उन पर विचार करते रहो, उनका आचरण करते रहो। उनका त्याग कभी नहीं करना चाहिए। अगर तुम उनके अनुसार आचरण करते रहोगे, तो तुम्हारा जीवन सदा सुख से परिपूर्ण होगा।

"उपदेश की कुंजी है-अपने हृदय पर काबू पाना। इसलिए वासनाओं को संयमित करके अपने-आप पर विजय पाने का प्रयास करते रहो। शरीर को पवित्र रखो, मन को शुद्ध रखो, सदा सत्य वचन बोलो। लोभ का त्याग करो, क्रोध मत करो, पाप से दूर रहो, और सदा अनित्यता का चिन्तन करते रहो।

"अगर हृदय (मन) मोह के वश होकर, लोभ का शिकार बनने की नौबत आ जाए, तो उसका दृढ़तापूर्वक दमन करना चाहिए। हृदय के दास न बनकर, हृदय के स्वामी बनो।

"मनुष्य का हृदय उसे बुद्ध भी बना सकता है और पशु भी बना सकता है। मोह में फँसकर वह राक्षस बनता है, और निर्वाण प्राप्त कर वह बुद्ध बनता है। यह सब हृदय का खेल है।इसलिए हृदय पर नियंत्रण रख कर, उसे सच्चे पथ से विचलित न होने देने का प्रयास करते रहो।

"भिक्षुओं, तुम लोगों को मेरे धर्म का पालन करते हुए आपस में मिलजुल कर रहना चाहिए, एक-दूसरे का आदर-सत्कार करना चाहिए, आपस में झगड़ना नहीं चाहिए। पानी और दूध के समान एक-दूसरे में घुलमिल जाओ। पानी और तेल के समान एक-दूसरे को नकारना नहीं चाहिए।

"सब मिलकर धर्म की रक्षा करो, मिलकर अध्ययन करो, मिलकर उसका आचरण करो, एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते हुए, साधना का आनन्द एक साथ लूटो। बेकार बातों की ओर ध्यान देकर, व्यर्थ बातों में समय बर्बाद न करो। निर्वाण के पुष्प को तोड़ कर, सच्चे पथ के फल को हस्तगत करो।

"भिक्षुओं, इस धर्म का स्वयं साक्षात्कार करके, मैंने तुम लोगों को उसका उपदेश दिया है। तुम लोग इसकी ठीक से रक्षा करो और उसका अनुकरण करते हुए आचरण करते रहो।

"अतः जो इस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते, वे मुझसे मिलकर भी नहीं मिले, मेरे साथ रहकर भी मुझसे दूर हटे हुए है। दूसरी ओर इस उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला मुझसे दूर रहते हुए भी मेरे निकट रहता है।

"भिक्षुओं, मेरा अन्त अब बहुत निकट है। हमारा वियोग अब दूर नहीं है। फिर भी शोक मत करो। यह संसार अनित्य है, यहाँ ऐसा कोई नहीं जो जन्म लेकर मरता नहीं। अब मेरा शरीर भी जर्जर शकट के समान टूट जाएगा, यह भी इसलिए होगा कि अनित्यता के सिद्धान्त को मैं अपने शरीर को लेकर दिखा सकूँ।

"व्यर्थ शोक मत करो। अनित्यता के इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर, मनुष्य-जीवन के सच्चे रूप को आँखें खोलकर देखना चाहिए।

उसको सच्चे अर्थ में समझना चाहिए। जो नित्य परिवर्तनशील है, उसे अविकार्य बनाने का प्रयास करना व्यर्थ है।

"संसारिक क्लेशों के राक्षस सदा अवसर पाकर तुम लोगों पर आक्रमण करने के लिए तुले हुए है। यदि तुम्हारे कमरे में विषैला साँप रहता हो, तो जब तक उसे कमरे से बाहर निकाल नहीं दोगे, तब तक चैन की नींद नहीं सो सकोगे।

"क्लेशों के राक्षसों का पीछा करना चाहिए। क्लेशों के साँप को निकाल देना चाहिए। तुम लोगों को प्रयत्नपूर्वक अपने मन की रक्षा करनी होगी।

"भिक्षुओं, अब मेरी अन्तिम घड़ी है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि यह मृत्यु केवल शरीर की मृत्यु होगी, क्योंकि शरीर माता-पिता से पैदा होता है और अन्न द्वारा उसका पोषण होता है, उसका व्याधिग्रस्त (बीमार) होना और नष्ट हो जाना अपरिहार्य है।

"किन्तु बुद्ध का वास्तविक स्वरूप शरीर नहीं, अपितु निर्वाण होता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी निर्वाण, धर्म और साधना के रूप में अनंतकाल तक जीवित रहता है। इस लिए जो केवल मेरे शरीर को देखता है,वह सच्चे अर्थ में मुझे नहीं देखता।जो मेरे धर्म को जानता है वही सचमुच मुझे देखता है।

"मेरे देहान्त के बाद, मेरा उपदेशित धर्म ही तुम लोगों का शास्ता (मार्गदर्शक) होगा। इस धर्म का अनुसरण करना ही तथागत(बुद्ध) की सेवा करना है।

"भिक्षुओं मुझे अपने जीवन के अंतिम पैंतालीस (45) वर्षों में जो कुछ धर्म-उपदेश देने चाहिए थे, मैं सब दे चुका हूँ, और जो कुछ करना चाहिए था, मैं सब कर चुका हूँ। धर्मों में तथागत(बुद्ध) की कोई आचार्य-मुष्टि(रहस्य) नहीं है। तथागत(बुद्ध) ने सभी उपदेश स्पष्ट, अगुप्त और अकूट किए है। तथागत(बुद्ध) ने कुछ भी छिपाकर नहीं रखा। "भिक्षुओं, अब मेरी अन्तिम घड़ी है। मेरा अब परिनिर्वाण होगा। यही मेरा अंतिम उपदेश है।"

परिनिब्बान-सुत्त, महापरिनिब्बान-सुत्त

* बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान: बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार की संस्था।

* बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान:

"श्री एहान नुमाता" ने पूरी दुनिया में बौद्ध विचार का प्रचार और प्रसार करने का संकल्प लिया और 1965 में इसी उद्देश्य के साथ "बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान" की स्थापना की। जोकि वर्तमान समय में 'सार्वजनिक जन हित संस्था' के रूप मे जापान सरकार से मान्यता प्राप्त है। यह बौद्ध धर्म की भावना, बौद्ध संस्कृति और उसके अकादमिक पदोन्नति को बढ़ावा देता है, यह लोगों में मानवी मन की प्रज्ञा, करूणा, सहानुभूति तथा एक साथ रहने की भावना को जागृत करता है, साथ ही समृद्ध समाज के निर्माण में योगदान देता है। यह संस्था अपने इस लक्ष्य को विकसित करने में सदैव अग्रसर है।

*** बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान के कार्य-कलाप -:**

* बौद्ध धर्म की शिक्षा और सहायता के लिए अग्रणी (तत्पर) रहना।
* बौद्ध धर्म की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख विदेशी महाविद्यालय में "नुमाता बौद्ध शिक्षा" की स्थापना एवम् प्रोत्साहन देना।
* "बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान" संस्कृति पुरस्कार का आयोजन करना।
* प्रति वर्ष उन लोगों को "बौद्ध धर्म प्रचारक संस्कृति" पुरस्कार प्रदान करना, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में बौद्ध धर्म आध्यात्मिक संस्कृति के विकास में योगदान दिया है।
* बौद्ध संगीत का आधुनिकीकरण और प्रचार करना।
* बौद्ध धर्म-ग्रन्थों का प्रचार-प्रसार करना।
* संगीत-कार्यक्रम और संगीत-प्रतियोगिता का आयोजन करना। और बौद्ध संगीत का सामान्य रूप से विस्तार करने के लिए कई कार्यक्रमों का आयोजन करना।
* "सूत्रों" का अंग्रेजी में अनुवाद करना।
* यह संस्था चीनी वर्णमाला में लिखे हुए सूत्रों को संगठित करके "बौद्ध धर्म-ग्रन्थों" का सरल अंग्रेजी में अनुवाद कर रही है। ताकि अधिक से अधिक लोग महान शास्ता के उपदेशामृत से लाभांवित हो सके। यह इस संस्थान की हार्दिक आकांक्षा है।
* योग्य छात्रों को छात्रवृति प्रदान करना।
* बौद्ध धर्म का अध्ययन करने वाले राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना। छात्रवृत्तियाँ प्राप्त किए हुए अधिकतर छात्र बौद्ध धर्म अध्ययन के अग्रणी विशेषज्ञों के रूप में पूरे विश्व में सक्रिय रूप से कार्यरत है।

बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान के प्रवासी सहयोग संगठन:

(BDK Affiliated Organization)

BDK America
http://www.bdkamerica.org

BDK Hawaii
E-mail: bdkshi@hotmail.com
http://www.bdkhawaii.com

BDK Canada
E-mail: honjo@bdkcanada.com
http://www.bdkcanada.com

BDK Mexico
E-mail: bdkmexico@prodigy.net.mx

BDK Europe
(EKŌ-Haus der Japanischen Kultur e.V.)
E-mail: eko@eko-haus.de
http://www.eko-haus.de

BDK Asia
E-mail: bdk@mitutoyo.com.sg

BDK Taiwan
E-mail: bdktaiwan@yahoo.com

BDK U.K.
E-mail: BDK.UK@mitutoyo.co.uk

BDK Poland
E-mail: j.urszkowski@mitutoyo.pl

BDK South America
E-mail: bdk@mitutoyo.com.br

"भगवान बुद्ध के उपदेश"-

"भगवान बुद्ध के उपदेश"- "सूत्रों का सार" बहुत ही साधारण अभिव्यकितयों तथा परिचित दृष्टांतों द्वारा आसानी से समझ आने वाले, परीचित, शुद्ध और सरल शब्दों में संपादित किया गया है, ताकि सामान्य लोग इसे आसानी से पढ़ और समझ सके। तथा वर्तमान में 64 देशों और क्षेत्रों में 9.4 मिलियन से अधिक मात्रा में "भगवान बुद्ध के उपदेश" ग्रन्थ भेंट किए गए है। "भगवान बुद्ध के उपदेश" को 46 भाषाओं में अनुवादित किया गया है।

BUKKYO DENDO KYOKAI
Society for the Promotion of Buddhism
http://www.bdk.or.jp

Various editions

Arabic
Bengali
Bulgarian
Cambodian
Chinese(Regular)
Chinese(Simplified)
Danish
Dutch
Dzongkha
English
Esperanto
French
Finnish
German
Greek
Hindi
Indonesian
Italian
Japanese
Kazakh
Korean
Kyrgyz
Magyar
Malayalam
Mongolian(Cyrillic)
Mongolian(Mongolian)
Myanmar
Nepali
Norwegian
Persian
Polish
Portuguese
Rumanian
Russian
Serbia-Croatian
Singhalese
Spanish
Swahili
Swedish
Tagalog
Thai
Tibetan
Turkish
Urdu
Uzbek
Vietnamese